



INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय सिनेमा की नज़रों में 'थर्ड जेंडर' एवं समलैंगिकता

संजय कुमार यादव, शोधार्थी
सनराइज विश्वविद्यालय, अलवर

शोध सार

पुरुष और स्त्री के अलावा संसार में तीसरे समुदाय, यानी तृतीय प्रकृति के मनुष्य भी रहते हैं, जो या तो त्यक्त हैं या हाशिए पर रखे गए हैं। किन्नर और समलैंगिक समुदाय अपने जीवन के अधूरेपन को जन्म से लेकर मृत्यु तक संजोए, समाज में तिरस्कृत, अपमानित और जीवनभर संघर्ष करने हेतु अभिशप्त हैं। इन उपेक्षित समुदायों को साहित्य में शब्दबद्ध करना साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता रही है। आज साहित्य में उनकी पीड़ा को उभारने की तमाम कोशिशें जारी हैं, खासकर भारत के संदर्भ में। हिंदी साहित्य में इनकी अस्मिता और पीड़ा भरे जीवन को समाज के समक्ष लाने और उचित स्थान प्रदान करने का प्रयास चल रहा है। इन्हें लेकर हमारे समाज में तमाम भ्रांतियाँ मौजूद हैं। इस बात को ध्यान में रखकर LGBTQIA+ का एक वास्तविक परिचय और सही व्याख्या प्रस्तुत करने की पहल की गई है। हिंदी सिनेमा के तहत भी किन्नर और समलैंगिक समुदाय को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

बीज-शब्द समलैंगिक, किन्नर, सिनेमा, फिल्म

सिनेमा हमारी संस्कृति का हिस्सा है। यदि हमारे जन-जीवन को कोई कला सबसे अधिक व्यापक तौर पर प्रभावित करती है, तो वह सिनेमा है। जैसा कि हम जानते हैं, सिनेमा एक कला है, और कला का संबंध मनुष्य की सृजन क्षमता से माना जाता है। मनुष्य ने अपने प्रारंभ से ही अपनी सृजन क्षमता के माध्यम से विभिन्न कलाओं से संसार को परिचित करवाया। इसी दृष्टिकोण से सिनेमा में भी कला के रूप में व्यावसायिक और अव्यावसायिक फिल्में बनती रही हैं, और दर्शक एवं आलोचक उन्हीं फिल्मों को भविष्य में भी याद रखते हैं, जो हमारी संस्कृति से जुड़कर गहराई से हमारे समाज को प्रभावित करती हैं। सिनेमा सिर्फ आनंद का एकमात्र साधन नहीं है, बल्कि यह हमारे समाज को वैचारिक रूप से प्रभावित कर विचारों को मजबूती प्रदान करता है। अतः सिनेमा को हम कला का सबसे लोकप्रिय माध्यम समझते हैं, जो समाज और समय का सबसे जीवंत दस्तावेज है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि सिनेमा के विषय अपने मूल रूप में हमारे समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित हैं, तथा समाज में मुख्य रूप से प्रचलित मान्यताओं को ही सिनेमा में स्वीकृति मिलती है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य की बात करें, तो सिनेमा में सामाजिक परिप्रेक्ष्यों से अलग हटकर चित्रण मुख्य धारा के रूप में हिंदी सिनेमा में न के बराबर या गिनती के रूप में ही देखने को मिलता है।

जब से सिनेमा का निर्माण प्रारंभ हुआ, तब से अब तक अनेक सामाजिक विषयों एवं मुद्दों को अपना मुख्य केंद्र बिंदु बनाकर अनेक फिल्में बनाई जाती रही हैं। दलित समस्या, नारी समस्या और निम्न वर्ग की समस्याओं को केंद्र में रखकर प्रारंभ से अब तक अनेक फिल्में बनती आई हैं। जैसे साहित्य में रचनाकारों की दृष्टि इन सभी को उजागर करने की ओर रही, उसी प्रकार फिल्म निर्माताओं का ध्यान भी इसी तरफ अधिक गया और प्रारंभ में ही चला गया। किंतु सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त किन्नर एवं समलैंगिक लोगों की तरफ फिल्म निर्माताओं की नजर नहीं गई। यदि दृष्टि गई भी, तो उन्हें गौण रूप से चित्रित किया गया।

उनके प्रति सिनेमा की नजर निष्ठुर रही और फिल्मों में निर्ममता से किन्नर और समलैंगिक लोगों के साथ मजाक उड़ाने वाला व्यवहार किया गया, जैसा व्यवहार समाज करता है। अर्से तक उनके किरदार को

हास्य उत्पन्न करने वाला माध्यम बनाया गया। फिल्म उद्योग ने इन्हें गलत तरीके से अंकित किया। जैसा कि सामान्य जनमानस पूर्ण रूप से सिनेमा से प्रभावित है, इसी वजह से फिल्मों में जो कुछ भी प्रदर्शित किया जाता है, उसे ही सही समझ कर अपना लेते हैं। इसी कारण प्रारंभिक दौर की फिल्मों और मीडिया में किन्नर एवं समलैंगिकों के प्रति जो नकारात्मक और हास्यस्पद रूप अपनाया गया, उससे किन्नरों और समलैंगिकों के प्रति समाज में नकारात्मक प्रभाव बढ़ता हुआ □□□□

इसके अलावा, हमारा भारतीय समाज पितृसत्तात्मक और मातृसत्तात्मक व्यवस्था से प्रभावित होने के कारण किन्नर एवं समलैंगिक मनुष्यों को फिल्म के केंद्र में स्थान देने में असमर्थ रहा। भारतीय सिनेमा में बॉलीवुड का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। बॉलीवुड के पास परंपरागत विषयों से अलग हटकर काम करने के अनेक अवसर प्राप्त हैं, किंतु LGBTQIA+ के प्रति बॉलीवुड की दृष्टि भी निराशाजनक ही रही।

किन्नर और समलैंगिक से संबंधित फिल्मों के संदर्भ में, यदि हम भारत से बाहर की बात करें, तो वहां भारत की तुलना में काफी अधिक फिल्में बनी हैं और उन्हें विश्व सिनेमा में बहुत महत्व मिला है। परंतु जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है, हमें फिल्म निर्माताओं की सोच में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा है। हाल में बनी फिल्मों में कहीं न कहीं किन्नर और समलैंगिकों के प्रति सकारात्मक विचार देखने को मिल रहे हैं।

इन फिल्मों में उनके जीवन की कथा को अंकित करते हुए, उनके सामने आने वाली सामाजिक समस्याओं को गंभीरता के साथ चित्रित किया जाने लगा है। साथ ही, समाज की रूढ़िवादी पूर्व परंपरा और अलिखित रीति-रिवाज के प्रति उनका गुस्सा और उनके हक की लड़ाई को भी फिल्मों में दिखाया जाने लगा है। यह परिवर्तन न केवल सिनेमा के लिए, बल्कि समाज में जागरूकता फैलाने के लिए भी महत्वपूर्ण है।

सन 1961 में किन्नर समाज से निकटता के तौर पर 'सड़क' फिल्म आई, जो महेश भट्ट के निर्देशन में बनी। इसमें अभिनेता सदाशिव अमरापुरकर ने एक किन्नर की भूमिका निभाई। पुराने सोच के अनुसार, हमारे समाज में मुख्य और शक्तिशाली भूमिका पुरुष की मानी जाती है, और फिल्मों में भी पुरुष को प्रमुख पात्र के रूप में पेश किया जाता रहा है। परंतु इस फिल्म में एक किन्नर को खलनायक के रूप में अंकित कर अभिनेता रवि और अभिनेत्री पूजा के प्रेम में बाधक के रूप में दिखाया गया है। इसके साथ ही, इसमें किन्नर का चित्रण कर समाज के संदर्भ में उन कठिनाइयों को उजागर करने का प्रयास किया गया है, जो उन्हें अपनी पहचान बनाने में सामना करना पड़ता है।

साथ ही, इसमें किन्नर के प्रति भारतीय समाज के पूर्वाग्रह और भेदभाव को भी दिखाने का प्रयास किया गया है। इस तरह से इसमें किन्नर के जीवन की कठिनाइयों को स्पष्ट किया गया है। यह चित्रण मानवीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर किया गया है, जो दर्शकों को सोचने पर विवश करता है कि हमें समाज में इस पहलू के प्रति जागरूक होकर सहानुभूति और समझदारी दिखानी चाहिए।

इसके आगे बढ़ते हुए, सन 1996 में अमूल पाटेकर द्वारा निर्देशित फिल्म 'दायरा' देखने को मिलती है, जो किन्नरों की जिंदगियों और उनके द्वारा किए जा रहे संघर्षों पर केंद्रित है। इस फिल्म की कथा में एक किन्नर को समाज में अस्वीकृति और भेदभाव का सामना करते हुए देखा जाता है। इस फिल्म द्वारा किन्नर समुदाय के प्रति हमारे समाज के दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास हुआ है, जो सकारात्मक संदेश देता है।

इसके बाद, 1996 में 'फायर' नामक इंडो-कैनेडियन कामुक रोमांटिक ड्रामा फिल्म बनी, जिसे दीपा मेहता ने लिखा और निर्देशित किया। इस फिल्म में शबाना आजमी और नंदिता दास ने मुख्य भूमिका निभाई। यह फिल्म इस्मत चगाता द्वारा रचित उर्दू कहानी 'लिहाफ' (1942) पर आधारित है और इसे समलैंगिक संबंधों को स्पष्ट तौर पर दिखाने वाली बॉलीवुड की पहली फिल्म माना जाता है। आगे चलकर, 1998 में रिलीज होने के बाद कार्यकर्ताओं ने इसका विरोध प्रदर्शन किया।

सन 1997 में फिल्म 'दरमियां' में किन्नर समुदाय का चित्रण एक महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील तरीके से किया गया है। इस फिल्म में किन्नर को केवल एक शारीरिक पहचान के रूप में नहीं, बल्कि एक संपूर्ण और कठोर मनुष्य के अनुभव के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जो दर्शकों को उनके विषय में सोचने पर मजबूर करता है।

इसी क्रम में, महेश भट्ट की फिल्म 'तमन्ना' (1997) में किन्नर पात्र को एक मजबूत एवं संवेदनशील व्यक्ति के रूप में दिखाया गया है। फिल्म के दो किन्नर पात्र, टिंकू और तमन्ना, भारतीय समाज में फैली लिंगगत पहचान पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं।

आशुतोष राणा ने किन्नर की भूमिका के तौर पर 'संघर्ष' (1999) नामक फिल्म में अपने दर्शकों के सामने खुद को लाते हैं। लज्जा शंकर पांडे नामक एक ट्रांस महिला का रोल निभाया, जो काली माता की आराधना करती है।

सन 2005 में योगेश भारद्वाज द्वारा निर्मित फिल्म 'शबनम मौसी' किन्नर के वास्तविक जीवन पर आधारित है। यह फिल्म मध्य प्रदेश के सुहागपुर विधानमंडल से जीत हासिल कर विधायक बनने वाली किन्नर के लंबे सफर का चित्रण करती है। शबनम मौसी समाज में किन्नरों के प्रति होने वाले राजनीतिकरण पर खुला व्यंग्य है।

साल 2013 में हिंदी फिल्म 'बॉम्बे टॉकीज' आई, जिसमें रणदीप हुड्डा और सकीब सलीम मुख्य भूमिका में हैं। इस फिल्म को करण जौहर, अनुराग कश्यप, जोया अख्तर और दिवाकर बनर्जी ने निर्देशित किया है। फिल्म में एक समलैंगिक (गे) जोड़े की कहानी दिखाई गई है, जो अपने सीन को लेकर काफी चर्चा में रही।

'अलीगढ़' (2016) में हंसल मेहता ने हमारे समाज की एक सच्ची घटना पर आधारित फिल्म बनाई है। इसमें अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्राध्यापक रामचंद्र सिरसा की कहानी को केंद्र में रखा गया है, जो एक समलैंगिक (गे) थे। यह फिल्म समलैंगिक रिश्तों के मुद्दों को उजागर करती है और यह दिखाने का प्रयास करती है कि कैसे समाज में रूढ़िवादी सोच रखने वाले लोगों के कारण किसी व्यक्ति के जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

किन्नर और समलैंगिकता के संदर्भ में अन्य भारतीय फिल्मों की बात करें, तो गहन अध्ययन के पश्चात हमें यही देखने को मिलता है कि किन्नर और समलैंगिकों अथवा LGBTQIA+ समूह में स्थान पाने वालों के प्रति भारतीय फिल्म निर्माताओं का ध्यान कम ही रहा है। हिंदी फिल्मों के अलावा, अन्य भाषाओं की फिल्मों में भी किन्नरों पर चर्चा हुई है।

कल्पना लाजमी की फिल्म 'दरमियां' (1997) और तमिल भाषा में 'अप्पू' (2000) इसके उदाहरण हैं। इसके अलावा, राघव लॉरेंस की फिल्म 'कंजना' (2011) और शंकर की 'ऐ' (2015) में भी किन्नरों का समावेशन किया गया है।

बांग्ला सिनेमा में 'आमी सारा बनो' फिल्म में सुप्रसिद्ध अभिनेता राजकुमार राव ने किन्नर की भूमिका निभाई है, जिसमें बचपन से बड़े होने तक आने वाली समस्याओं का चित्रण हुआ है। इसके अलावा, 'आरोक्ति प्रेमेर गोलपो' आदि प्रमुख हैं।

कन्नड़ में बी.एस. लिंगदेवड़ा की 'विद्या' और मलयालम में लाल जोस की 'चांदपोटड' (2005) जैसी फिल्मों में भी किन्नर को आधार बनाकर बनाई गई हैं।

इस प्रकार, सिनेमा, जो हमारे समाज का आईना समझा जाता है, ने लंबे समय तक LGBTQIA+ समुदाय के लोगों को हाशिए पर रखा और उन्हें हास्य एवं उपहास का पात्र बनाकर फिल्मों में चित्रित करता रहा। परंतु, उनके प्रति यह नकारात्मक चित्रण न केवल उनके समुदायों की अस्मिता और पहचान को अंदर-अंदर कमजोर और घायल करता रहा, बल्कि समाज में पहले से विद्यमान पूर्वाग्रहों को और अधिक बढ़ावा भी देता रहा।

हालांकि, इन कई वर्षों में कुछ फिल्म निर्माताओं ने किन्नर और समलैंगिकता के पक्ष को संवेदनशील और सकारात्मक स्वरूप में प्रस्तुत करने की दिशा में अपनी पहल दिखाई है। फिल्मों जैसे 'दायरा', 'फायर' और 'अलीगढ़' ने इस समुदाय के जीवन के संघर्षों और उनके निजी अधिकारों को उजागर करने का अच्छा प्रयास किया है। यह फिल्में दर्शकों को न केवल मनोरंजित करती हैं, बल्कि उन्हें इन अपेक्षित समुदायों के प्रति सहानुभूति और समझ विकसित करने हेतु प्रेरित भी करती हैं।

अतः यह स्पष्ट होने लगा है कि भारतीय सिनेमा में किन्नर और समलैंगिकता को लेकर धीरे-धीरे बदलाव देखने को मिल रहा है। यह बदलाव LGBTQIA+ समुदाय को उचित तौर पर चित्रित कर, समाज में उनकी पहचान और अधिकारों को पाने में एक महत्वपूर्ण संघर्ष का अंग बन रहा है। इस दिशा में आगे बढ़ने से न केवल सिनेमा की दुनिया में विविधता देखने को मिलेगी, बल्कि समाज भी जागरूक होगा और समरसता फैलेगी।

सन्दर्भ :---

1. भारतीय भाषा शिक्षा साहित्य एवं शोध

http://www.bhartiyashodh.com/article_pdf?id=10494.pdf

2. थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ, संन्याज शगुप्ता

3. हमारा बॉलीवुड थर्ड जेंडर को कैसे देखता है?

<https://www.amarujala.com/news-archives/other-archives/third-gender-in-bollywood-hindi-ap>

4. किन्नर विमर्श साहित्य के आईने में, डॉक्टर अहमद इकरार

5. हिंदी फिल्मों में किन्नर व समलैंगिक समाज की उपस्थिति का विश्लेषण

https://groundreportindia.org/books/2019/01/19/sangeeta-gandhi/#google_vignette

6. थर्ड जेंडर के लिए किन्नर शब्द के प्रयोग पर सवाल, एसआर हरनोट

7. Gender, Law, and Social Change Initiative

<https://glsci.wordpress.com/2018/09/27/transgender-portrayal-in-indian-cinema/>

8. किन्नर का समाज कुछ मुद्दे एवं समाजशास्त्रीय अध्ययन, सरिता गौतम